ईर्ष्याग्नि

डॉ. प्रिया राणा
मो. 9526414087
priyarana1504@gmail.com

इस संसार में सभी लोग अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पदार्पण करते हैं। संस्कार रूपी सीमेंट ओर खाद-पानी लगने के बाद भी उनकी जन्मजात प्रवृत्ति उनके व्यक्तित्व में बची रहती है। किंतु कुछ लोगों में जहाँ एक और संस्कार बचे रहते तो दूसरी ओर प्रवृत्ति में ही बदलाव आ जाता है। इसी बदलाव का एक उदाहरण है-अपर्णा श्रीवास्तव। परिचय की बात करें तो वह एक कॉलेज में लेक्चरर है। संक्षेप में कहा जाए तो अपर्णा श्रीवास्तव... मतलब एक मेधावी, सुंदर, सुशील स्त्री। अब यह सुंदर, सुशील तो फिर भी ठीक है किंतु हमारे समाज में एक स्त्री का मेधावी होना, मानो तौबा-तौबा... लाहौल विला कूवत! यह भी कोई बात हुई भला! वहीं दूसरी ओर एक-दो को छोड़ दिया जाए तो हमारे समाज में औरतों की सफलता के पीछे दुनिया भर की वाहियात कहानियाँ और किस्से गढ़े होते हैं। लोगों के विचारों की वीभत्सता को पार कर जाना ही सफलता को पा जाना है। फिर चाहे पुरुष कितने ही बिस्तरों की गर्माहट का संबंध आप से जोड़ता फिरे।

एक औरत का चरित्र किसी और की कसौटी पर खरा उतरने का मोहताज नहीं है बल्कि उसकी तो निर्माणकर्ता तथा विध्वंसकर्ता केवल और केवल वह औरत है, जिसने अपने व्यक्तित्व की नसों में ग्लूकोज की भाँति उसे बूँद-बूँद पहुँचाया है। कुल मिलाकर अपर्णा का सफलता की सीढ़ियों तक पहुंचने का सफर अपने चरित्र को अपनी नसों में बचाए रखने में ही प्रयत्नशील रहा। बाकी भविष्य किसने देखा है?

बत्तीस वर्षीय अपर्णा का आवास विश्वविद्यालय परिसर से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर था। जहाँ वह अपनी नीला काकी के साथ रहा करती थी। नीला काकी पचीस बरस पहले जो अपर्णा के घर में आई, तो वहीं की होकर रह गई। पति की मृत्यु के बाद जब नीला काकी के रहने-खाने का ठिकाना ना रहा, तब दर-दर की ठोकरें खाने के बाद उन्हें गीता का आश्रय मिला था।

गीता, अपर्णा की माँ थी। अपर्णा के पिता का देहांत तभी हो चुका था, जब अपर्णा अपने यौवन की कलियाँ

चुन-चुनकर अपनी मुस्कुराहटों से खिला देने की स्वाभाविक प्रक्रिया में मग्न थी। भौरों के मँडराने का समय भी लगभग यही होता है। ऐसी आधी कच्ची, आधी पक्की उम्र में भँवरों का बेटी या बहन के आसपास फटकना पिता और बड़े भाई को सतर्कता की लाठी पकड़ा देता है। अब भाई तो कोई था नहीं, पिता भी अठारह साल की अपर्णा को छोड़कर जो गए तो फिर कभी वापस ना लौटे।

नीला काकी तो पहले से ही वैधव्य का जीवन जी रही थी। अपर्णा की माँ को नीला में अपना संबल मिला और फिर वैधव्य की पीड़ा को विधवा के अतिरिक्त कोई और महसूस नहीं कर सकता। 'विधवा ही जाने विधवा का दरद और न जाने कोय' वाला भाव नीला काकी को गीता के और करीब ले आया। फिर चाहे उन दोनों में शिक्षित और अशिक्षित की दीवार ही क्यों ना हो। कुछ पीड़ाएँ और दुखों का बहाव ऐसी कई दीवारों को पाटने का दम रखता है। कुल मिलाकर एक-दूसरे के आँसू पोंछने में कोई दीवार बीच में ना आ सकी।

बैंक में मैनेजर अपर्णा की माँ दुनिया जहान के मर्दों की करतूतों का बखान नीला से करती। अपने पति की मृत्यु के बाद वह अपने आस-पास मक्खी की तरह मँडराते तो कभी कुत्तों की मानिंद लार टपकाते, लपकने को तैयार लंपटों की चर्चा करती। वह हमेशा कहती- 'नीला यह थे तो कभी किसी की हिम्मत न थी जो सम्मान के दो शब्द के अलावा तीसरा शब्द मुँह से निकाल दे।' भाभी जी नमस्ते से आगे सभी संबोधन गतिहीन हो जाते थे। यह जो गए तो घर की दहलीज के अंदर कदम रखने को आतुर यह हमदर्दों का जत्था अचानक ना जाने कहाँ से पैदा हो गया? नीला, सच कहूँ तो बड़ा डर लगता है और फिर अपर्णा भी तो बड़ी हो रही है।'

'सही कहती हो जीजी! मुझे भी अगर तुम्हारा आश्रय ना मिला होता तो शायद मैं भी किसी मर्द की वासना की बलि चढ़ गई होती। पति के मरने के बाद मुआ मकान मालिक शराब पीकर रोज मेरी कुंडी खड़का देता। वह तो मैंने कभी दरवाजा नहीं खोला और जीजी... कब तक ना खोलती, खोलना ही पड़ा। घर से भागने के बाद दस-बारह दिन बिरमी के खेत के पीछे बने मंदिर में छुपकर गुजारे। वहाँ से भागी तो तुमसे टकराई। जीजी! सच कहूँ तो यह मरद जात होवे ही ऐसी है ससुरी। लपके भी ये हीं, लपककर बचावे भी ये हीं। बिना मरद औरत का गुजारा कहाँ। रांड तो फिर भी जी ले, रंडुवे जीने दे तब ना।'

फिर से दोनों के दुख एक दूसरे में गुँथ जाते। इन सब बातों का परिणाम निकलता, अपर्णा को पास बिठाकर बार-बार घुमा-फिराकर एक ही बात समझाना- 'बेटी अपर्णा, एक अकेली औरत के लिए एक पुरुष अगर राक्षस है तो दूसरा देवता। इन दोनों से इतर कुछ-कुछ मनुष्य भी होते हैं। देवता ना सही किंतु मनुष्य भी मिल जाए तो भी बेहतर लेकिन राक्षस से बचाव जरूरी है, वह ना जाने कब किस देवता या मनुष्य का रूप धारण करके जीवन में आ जाए।'

घर से मिली ऐसी नसीहतों ने जहाँ शुरुआत में अपर्णा के स्वभाव में भय का भाव जगाया, वहीं माँ की मृत्यु के बाद भय का स्थान कठोरता तथा सख्ती ने ले लिया था। दर्द को पी जाना, कठोर हो जाना ही तो है। पहले पिता के जाने की पीड़ा और फिर माँ के जाने का दर्द, पत्थर ना बनती तो बह जाने का डर था। किसी के साथ बह जाना जीवन की निरंतरता में अवरोध उत्पन्न करना है वरना पीड़ा का बहाव तो 'चिंता, चिता के समान होती है।' वाली उक्ति को व्यावहारिकता में तब्दील कर जाता, जो अपर्णा ने होने ना दिया।

विपरीत परिस्थितियों में तटस्थ रहना जीतने की निशानी है। हार जाना मर चुकी माँ के सपने तोड़ देना था। सो सपने पूरे हुए। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रख्यात कॉलेज में लेक्चरर का पद मिला। हालाँकि शुरुआत थी, एडहॉक मिला था जो लगातार तीन साल से रिन्यू होता आ रहा था। अभी स्थायी नियुक्ति की प्रतीक्षा थी लेकिन फिर भी जीवन ने कुछ रफ्तार पकड़ ली थी।

अपर्णा के जीवन की इस रेलगाड़ी के डिब्बों का अपना महत्त्व था। किसी में महत्वाकांक्षाएं थी, किसी में पिता का प्रेम तो किसी डिब्बे में माँ की नसीहतें, किंतु अब एक और डिब्बा किसी के प्रेम से लबालब भरा अपर्णा की ओर कातर निगाहों से देख रहा था। यह निगाहें शंकर उपाध्याय की थीं।

शंकर उपाध्याय और अपर्णा श्रीवास्तव दोनों सहकर्मी थे किंतु शंकर का अनुभव अपर्णा से ज्यादा था। वह पिछले पाँच साल से इसी कॉलेज में पढ़ा रहा था। हालाँकि दोनों का विषय अलग-अलग था। अपर्णा साहित्य की शिक्षिका थी तो दूसरी ओर शंकर अर्थशास्त्र का शिक्षक। अपर्णा के रिजर्व

और स्वयं में ही सिमटे रहने वाले व्यक्तित्व को प्रेम से भिगो देना शंकर उपाध्याय के लिए किसी जंग को जीतने से कम नहीं था। हृदय का भी क्या है, कहीं नहीं लगता, तो नहीं ही लगेगा और जब किसी से लगता है, तब सारी व्यावहारिकता एक तरफ और हृदय की मासूमियत एक तरफ। प्रेम में पड़ा सख्त से सख्त व्यक्ति भी भोलेपन का शिकार हो जाता है। शंकर का प्रेम से बुझा हुआ तीर कई प्रयासों के बाद ही सही, आखिर में निशाने पर ही लगा।

अपर्णा का सख्त मिजाज उसकी परिस्थितियों की देन था और परिस्थितियाँ बदलते देर नहीं लगती। शंकर का प्रेम अपर्णा के जीवन की रिक्तता को जितनी तेजी से भर रहा था, उतनी ही तेजी से उसकी आँखों की चमक और मन का उत्साह भी बढ़ता जा रहा था। आत्मनिर्भर तो वह पहले से ही थी किंतु अब आत्मबल का विस्तार जारी था।

शंकर के जीवन में ज्यादा संघर्ष कभी नहीं रहा था। उसने जो चाहा, कमोबेश वह सब कुछ प्राप्त करता चला गया। वह स्वभाव से जिंदादिल तथा हँसमुख था। उसके व्यवहार में हमेशा ही एक संतुलन का भाव रहता, जो व्यवहारिक दृष्टि से सभ्य समाज में उचित भी है। लेकिन जीवन कब कितना असंतुलित हो जाए, यह कोई नहीं जानता। शंकर और अपर्णा एक-दूसरे में अपना भविष्य देखने लगे थे। जब मन मुताबिक जीवन साथी मिल जाए तो जीवन के मायने ही बदल जाते हैं। शंकर अपर्णा से हमेशा कहता-'तुमने जीवन साथी को ढूँढने में खराब होने वाले मेरे समय को बचा लिया, झट से मिल गई।'

उसकी इस बात पर पहले थोड़ा लजाकर परंतु बाद में अपर्णा तुरंत ठठ्ठाकर हँस दिया करती थी। फिर थोड़ा चुप रहकर बोलती-'लेकिन तुमने क्यों इतनी देर कर दी? थोड़ा पहले आ जाते तो कुछ पल और जुड़ जाते तुम्हारे संग जीवन के।' और फिर कुछ देर पसरी खामोशी में दोनों एक दूसरे के प्यार में भर-भर गोता लगाते तो कुछ देर डूबकर वापस बाहर भी आ जाते।

कभी-कभी डर भी लगता कि प्रेम अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त करने के बाद अगर खत्म हो गया तो? इसीलिए पराकाष्ठा की दीवार को भेद जाने की हिम्मत अपर्णा ने कभी नहीं की। कभी यह जानने की कोशिश भी नहीं की कि उस पार क्या है? कुछ खो देने का डर उससे अधिक कौन जान सकता था भला!

उस रोज बारिश थमने का नाम ही नहीं ले रही थी, वहीं दूसरी ओर कॉलेज में आज महत्वपूर्ण मीटिंग थी। ऊपर से गाड़ी खराब हो गई थी। कार के पिछले पहिए को बदला जाना था किंतु इन सबके लिए समय किसके पास था? आखिरी विकल्प, रिक्शा में बैठकर मेट्रो तक पहुँचना था। मेट्रो कॉलेज के बिल्कुल पास में थी। बहुत देर सोचने के बाद नीला काकी को प्रणाम कर अपर्णा रिक्शे की खोज में निकली और कम समय में ही रिक्शा पकड़कर मेट्रो तक पहुँच भी गई। आनन-फानन में रिक्शे वाले को दस के बजाय बीस का नोट पकड़ाकर मेट्रो की ओर भागती अपर्णा को रिक्शावाला मैडम-मैडम करके चिल्लाता ही रह गया।

मेट्रो के गेट के अंदर घुसते ही अपर्णा का मोबाइल झट से बज उठा। शंकर का ही फोन था, उठाए भी तो वैसे और अनदेखा कर देना उसे ठीक प्रतीत नहीं हो रहा था, इसीलिए तुरंत फोन उठाकर अपर्णा ने जैसे ही 'हैलो' बोला तो दूसरी ओर से शंकर ने कहा कि अगर घर से नहीं निकली हो तो घर पर ही रहो। आज की मीटिंग कैंसिल हो गई है। शंकर की बात सुनते ही अपर्णा की गति में ब्रेक लग गए। फूलती हुई साँसें भी आराम करने के मूड में आ चुकी थी। 'अच्छा! ठीक है, फिर मैं वापस चली जाती हूँ।' अपर्णा ने शंकर को उत्तर दिया। शंकर ने भी 'बॉय' बोलते हुए फोन रख दिया। प्रत्युत्तर में 'बॉय' बोलकर अपर्णा ने जैसे ही फोन कट किया तथा मेट्रो के गेट से निकलकर रिक्शा स्टैंड की ओर कदम बढ़ाने लगी ही थी कि अचानक अपने नाम के संबोधन को सुनकर पीछे की ओर मुड़कर देखा तो तुरंत ही उसके चेहरे पर सम्मान के भाव के साथ मुस्कुराहट बिखर गई।

उसके गुरु डॉ. किशोरीलाल ने उसको देखकर पुकारा था। गुरु के आशीर्वाद की लालसा तथा सम्मान का भाव लेकर वह अपने गुरु के निकट जाकर उनके पैर छूने का प्रयास करने लगी। गुरु ने आशीर्वाद देने की मुद्रा में अपर्णा के सिर पर हाथ रखकर अपने पैरों को पीछे खिसकाकर कहा- 'अरे नहीं अपर्णा, तुमसे कितनी बार कहा है कि तुम्हारा पैरों को छूना मुझे नहीं भाता है और तुम हर बार भूल जाती हो।'

'सर, मैं कभी नहीं भूलती लेकिन आप चाहे कितना भी मना करें, आपके पैर छूकर मुझे जो अनुपम सुख प्राप्त होता है, भला मैं क्यों इस सुख से

वंचित रहूँ।' इतना कहकर अपर्णा थोड़ा गंभीर तथा एक शिष्या की गरिमा लिए मुस्कुराई।

'तुम्हारी जैसी मेधावी शिष्या का गुरु होना मुझे भी गर्व से भर देता है। तुम्हारे बारे में मॉरीशस में मेरे एक मित्र जिन्हें तुम भी अच्छे से जानती हो, डॉ. शर्मा से पता चला कि यहाँ तुमको कॉलेज में नौकरी मिल गई है। सुनकर तुमको बधाई देने का प्रयत्न किया पर संपर्क ना हो सका। किंतु तुमसे संपर्क तो करना ही था, अगर तुम अभी मुझे यूँ ना मिलती। दरअसल तुम्हारे लिए मॉरीशस की यूनिवर्सिटी में मैंने बात की है। तुमको पाँच साल वहाँ रहना होगा। तुम जा पाओगी?' डॉ. किशोरालाल ने अपनी बात खत्म करते हुए कहा। यह सुनकर अपर्णा फूली न समाई। कुछ देर के लिए वह अपनी वर्तमान जिंदगी को भूलते हुए बोली-'जी जरूर सर, मैं वहाँ अवश्य जाऊँगी।'

'अच्छा चलो, मैं निकलता हूँ। फिर मुलाकात होगी।' कहकर डॉ. किशोरीलाल एक बार फिर अपर्णा के सर पर आशीर्वाद का हाथ रख वहाँ से प्रस्थान कर गए तथा अपर्णा अपने गुरु से मिले स्नेह के भाव को लेकर घर लौट आई।

अपर्णा के गुरु डॉ. किशोरीलाल दिल्ली यूनिवर्सिटी में ही प्रोफेसर थे। एम. ए. के समय अपर्णा उनकी प्रिय छात्रा हुआ करती थी। ऐसी होनहार छात्रा से उन्हें भी बहुत उम्मीदें थीं। एम. ए., एम. फिल. और पीएच.डी. के बाद कॉलेज में नौकरी पा जाना किशोरीलाल की उम्मीदों तथा विश्वास पर खरा उतरना था। पिछले तीन सालों से डॉ. किशोरीलाल डेपुटेशन पर मॉरीशस यूनिवर्सिटी में पढ़ाने के लिए गए हुए थे। वापस लौटने पर अपर्णा से यह उनकी अचानक हुई मुलाकात थी।

महत्वाकांक्षाओं के बोझ तले दबी अपर्णा मॉरीशस जाने के सपने सजाने लगी। पुराने सपने कुछ देर के लिए धूमिल हो गए। वह भूल गई कि वह शंकर के साथ अपने भविष्य के सपने सजा रही है, मॉरीशस जाने का फैसला उन सपनों को रोते-बिलखते छोड़ देना है। अपनी खुशी को साझा करने को उत्सुक अगले दिन कॉलेज पहुँचते ही वह शंकर के पास गई। शंकर ने उसको इतना खुश आज तक न देखा था। इसलिए अपर्णा के कुछ कहने से पहले ही वह उससे पूछ बैठा-'क्या हुआ... कोई लॉटरी-वाटरी लग गई क्या? अपने चेहरे का तेज तो देखो, तुमसे सँभाले नहीं सँभल रहा।'

अपर्णा ने बिना देरी किए अपनी खुशी का राज बताया कि किस तरह उसके गुरु के द्वारा उसे इस अवसर की प्राप्ति हुई। अपर्णा के मुख से मॉरीशस जाने की बात सुनकर शंकर के मन में ईर्ष्या का भाव जागा। उसे स्वयं ही समझ न आया, भला अपर्णा के प्रति उसे ईर्ष्या कैसे हो सकती है। उसने मन ही मन स्वयं को धिक्कारा भी लेकिन फिर अपनी मुख मुद्रा में संतुलन बनाकर खुशी के बाद तुरंत उदासी के भाव से बोला-'अरे वाह! यह तो वाकई बहुत अच्छा अवसर है किंतु तुम और मैं...? क्या यह दूरी तुम सहन कर पाओगी?'

अपर्णा का उत्साह कुछ धीमा पड़ा। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद शंकर के हाथों पर हाथ रखकर बुझे हुए मन से उसने कहा-'मैं समझ नहीं पा रही हूँ शंकर, यह अवसर शायद मुझे दोबारा प्राप्त ना हो, तुमसे भी दूर रह पाना मेरे लिए संभव नहीं होगा। किंतु अगर तुम मेरे स्थान पर होते तो क्या करते?'

शंकर ने अपर्णा का हाथ अपने हाथों से हटाते हुए कहा-'मुझसे यह प्रश्न पूछना बेमानी है। तुम्हें छोड़कर जाने की तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। बाकी तुम्हारा अपना निर्णय है अपर्णा। मैं ना कहूँ भी तो कैसे?'

कभी-कभी वास्तव में चुनाव की प्रक्रिया से मुँह मोड़ लेने का मन होता है किंतु चुनाव तो हर व्यक्ति के जीवन में अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। रोज ही खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने से लेकर कहाँ, कब और कौन-सी चीज चुनाव की मोहताज नहीं है? चुनाव तो करना ही था तो शंकर को चुना गया। महत्वाकांक्षाएँ थोड़ी देर रोएँगी-बिलखेंगी... बाद में चुप होकर सो जाएँगी। जब कभी ऐसा ही दूसरा अवसर मिला तो जगा दूँगी दोबारा। महत्वाकांक्षाएँ ही तो हैं, बुरा थोड़े ही ना मानेंगी?

समय भाग रहा था और फिर से एक और वर्ष पीछे छूट गया। संबंध ज्यों के त्यों बने रहे। प्रेम को बचा लिया गया था। दूरी की आड़ में मरते-मरते बचा था पिछले वर्ष। शंकर और अपर्णा दोनों ही कॉलेज में स्थायी होने की जुगत में लगे थे। अपर्णा निरंतर अपने ज्ञान में वृद्धि की ओर अग्रसर थी तथा शंकर जुगत करने में व्यस्त था। काबिलियत तो शंकर में भी कम ना थी किंतु काबिलियत से ज्यादा पैरवी का जमाना है। सो शंकर जमाने के साथ चलने का पूरा प्रयास कर रहा था।

एक दिवस अपर्णा और शंकर कॉलेज की कैंटीन में साथ बैठकर पूरे दिन की

थकान को दूर करने का इरादा लेकर चाय पीने बैठे ही थे कि अचानक अपर्णा के गुरु डॉ. किशोरीलाल का फोन बज उठा। शंकर को डॉ. किशोरीलाल और अपर्णा के इस गुरु-शिष्या वाले संस्कारों पर बड़ी कोफ्त होती थी। लेकिन अपर्णा से इस बारे में यह कहना कि 'बंद करो यह नौटंकी, गुरु-शिष्या का जमाना तो कब का गया। आजकल तो हर जगह, गुरु एक पुरुष तथा शिष्या केवल एक देह मात्र है।' शंकर ने यह विचार अपने मन में ही रहने दिया। ऐसा कहने से उसे अपनी सोच को अपर्णा द्वारा दुत्कारे जाने का डर था।

अपर्णा ने फोन उठाया तथा कुछ देर बात करके रख दिया हालाँकि विषय को शंकर कुछ-कुछ भाँप गया था इसीलिए उसने अपर्णा से फोन के संदर्भ में पूछा। अपर्णा ने बताया कि किशोरी सर देशबंधु कॉलेज में निकली लेक्चरर की स्थायी नियुक्ति के संदर्भ में मुझे सलाह-निर्देश दे रहे थे। मैंने उनसे कहा कि मैं अपनी तैयारी को लेकर आश्वस्त हूँ। बाकी सर का आशीर्वाद तो हमेशा मेरे साथ है ही।'

इतना कहकर अपर्णा ने अपना चाय का कप खाली किया और शंकर के चाय के कप की ओर देखने लगी। शंकर भी चाय पीकर चलने को लगभग तैयार था क्योंकि उसका भी इंटरव्यू एक सप्ताह बाद था। समय को बचाना ही था इसलिए दोनों ही अपनी-अपनी तैयारी करने की मंशा लिए कॉलेज से घर की ओर प्रस्थान कर गए।

छह महीने निकल गए थे, शंकर लेक्चरर के पद पर स्थायी होने से वंचित रह गया था। अपर्णा ने उसे समझाया व सँभाला और दूसरे अवसर के लिए तैयारी करने को कहा था। शंकर रह-रहकर स्वयं को कोस रहा था। इंटरव्यू लेने वालों में चार सत्ता पक्ष के थे तथा केवल एक ही विपक्षी था और उसकी पैरवी करने वाला भी। अगर किसी सत्ता रूढ़ व्यक्ति से जुगत लगाई होती, तब तो बात बिल्कुल पक्की थी। समय-समय की बात है। सीट को सलाम होता है। केंद्र में जिस किसी की भी सरकार होती है, उसकी ही तूती बोलती है। अगली बार ऐसी गलती नहीं होगी, अपनी इस हार से शंकर ने केवल इतना ही सीखा था।

वहीं दूसरी ओर दो दिन बाद अपर्णा के रिजल्ट की तारीख थी। उसने तो केवल मेहनत की थी। पैरवी की होती तब तो कोई चांस होता। दो दिवस बाद शंकर ने ही अपर्णा के इंटरव्यू का परिणाम देखा। उसने यह सोचकर परिणाम देखा मानो केवल औपचारिकता पूरी कर रहा हो तथा वह पहले से जानता हो कि कुछ नहीं होने वाला। किंतु कंप्यूटर की स्क्रीन पर अभ्यर्थियों की सूची देख मानो आसमान उसके सर पर धम्म से आ गिरा हो और पाँवों के नीचे की जमीन धँस गई हो।

आज संतुलन बना पाना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन था। ईर्ष्या का भाव फिर से कुलबुलाने लगा था। आज प्रेम पर ईर्ष्या की जीत होने वाली थी। शंकर की जलन अंदर से बाहर आने के लिए अकुला रही थी किंतु इस जलन को अंदर ही ठहरना होगा। बाहर आना तूफान को आमंत्रित करना होगा।

शंकर ने स्वयं को संयत करने का प्रयास किया। प्रेम को प्रेम करने का प्रयास किया किंतु उसके अंदर की तपन ने प्रेम का हाथ पकड़कर यूँ झकझोरा कि प्रेम को क्रोध में परिवर्तित होने में देर न लगी। वह एकदम से चिल्लाया-'आखिर यह कैसे हो सकता है?'

उसका यह वाक्य उसके घर की दीवारों, यहाँ तक कि हर उस चीज ने सुना जो उसके घर में मौजूद थी किंतु अपर्णा तो वहाँ नहीं थी। वह होती तो क्या उत्तर देती? 'मैं उससे जरूर पूछूँगा' यह सोचकर वह गुस्से को अपने माथे पर हिलाते-डुलाते अपर्णा के घर पहुँचा। अपर्णा ने जैसे ही दरवाजा खोला तो शंकर को सामने पाया। वह तुरंत उससे लिपट गई और बोली-'तुम्हें ढेरों बधाइयाँ... तुम्हारी अपर्णा को स्थायी नियुक्ति मिल गई।

शंकर ने अपर्णा को अपने सीने से हटाते हुए कहा-'तो यह बधाइयाँ मुझे क्यों? नौकरी तो तुमने पाई है।'

'मैं और तुम कब से अलग हो गए? हमारे सुख-दुख तो एक ही हैं। आज यह दिन हम दोनों के लिए ही कितना महत्वपूर्ण है।' अपर्णा ने खुशी से शंकर के चेहरे की ओर देखते हुए कहा।

'मेरे लिए नहीं... केवल और केवल तुम्हारे लिए यह दिवस महत्वपूर्ण होगा अपर्णा! मैं तो पुरुष हूँ... इतने अवसर और इतनी जल्दी सफलता पा लेना मेरे लिए मुश्किल ही है।' शंकर ने अपनी बात को कुछ आगे बढ़ाते हुए अपर्णा पर अपने विचारों की गंदगी को उड़ेलते हुए कहा।

अपर्णा का चेहरा एकदम से फीका

पृष्ठ सं. 94 पर शेष भाग

कभी उनकी कमी महसूस हुई तो जिस चेहरे से आज मुझे मोहब्बत है, कहीं ऐसा नहीं हो कि उसी को जिंदगी भर कोसूँ।' वह एक पल को कहती हुई रुकी, जैसे उसने ठंडी साँस बाहर की ओर छोड़ी हो, फिर बोली, 'जाति से दलित होना इतनी बड़ी खाई बन जाएगा, कभी सोच न था...। इसी बीच मेरी माँ गुजर गई, पिता तो पहले ही गुजर चुके थे, मेरा प्रेम भी जाति के तले कुचला गया, रौंदा गया...! किस गलती कि सजा मिली...मुझे? जाति से ब्राह्मण पैदा नहीं हुई या दलित पैदा हुई,या, अपने ही प्रेमी द्वारा ठगी गई...?आखिर क्या गलती थी मेरी...?मेरी छोटी बहन चाहती थी कि मैं जल्द से जल्द विवाह कर लूँ... ताकि वह अपने प्रेमी से विवाह कर सके, लेकिन मेरा अपना प्रेमी किसी और से विवाह कर चुका था, अपनी ही बहन के विवाह की सबसे बड़ी विघ्न बन रही थी, अपनी ही बहन की नजर में, दुश्मन बनी हुई थी मैं...। बड़ी बहन के रहते भारतीय समाज में छोटी बहन का विवाह कैसे संभव है...? मैंने अगुआई की और अपनी छोटी बहन का विवाह, उसके प्रेमी से करा दिया...जानती थी कि प्रेमी से विवाह प्रेमिका की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है...।

बड़े भईया के गले लग रक्त के आँसू रोई थी उस रात...। भईया मैं, जाति के तले रौंदी गई...! हाँ-हाँ भइया, यही है जाति का यथार्थ❑

पृष्ठ सं. 83 का शेष भाग

पड़ गया। वह शंकर के इस व्यवहार को एकदम से समझ ही नहीं पाई और तुरंत पूछ बैठी-'तुम्हारा आशय क्या है? आखिर तुम कहना क्या चाहते हो?'

'मेरे कहने के लिए आखिर तुमने कुछ छोड़ा ही कहाँ है। तुम्हारा यह आज का रिजल्ट तुम्हारी करतूतों का ही परिणाम है। मैं तो उसी दिन समझ गया था कि दाल में कुछ काला है, जब तुम्हारे उस सो कॉल्ड गुरु का फोन आया था। फोन रखने के बाद मेरे पूछने पर तुमने सिर्फ और सिर्फ इतना ही बताया कि देशबंधु कॉलेज में स्थायी नियुक्ति की रिक्तियाँ हैं लेकिन यह नहीं बताया कि यह नियुक्ति तुम्हें किस कीमत पर मिलने वाली है। बार-बार तुम्हारे गुरु का तुम्हें फोन करना मुझे कभी न भाया किंतु मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा। लेकिन कब तक ना कहता, आज बोलना ही पड़ा।'

शंकर धाराप्रवाह इतना कुछ बोल गया जिसकी कल्पना तक कर पाना अपर्णा के लिए मुश्किल था। यह सब सुनकर वह स्तब्ध रह गई। उसके कान उस समय जो कुछ सुन पा रहे थे, वह किसी दुर्घटना से कम नहीं था।

दुर्घटनाएं केवल सड़कों पर ही नहीं होती। केवल शरीर को ही नुकसान नहीं पहुँचाती बल्कि घर की चारदीवारी में होने वाली ऐसी घटनाएं शरीर को भेदकर अन्तर्मन तक को छलनी कर देती हैं।

अपर्णा के मुँह से निकलने वाले शब्दों में पीड़ा अवश्य थी किंतु उनमें क्रोध लेशमात्र भी ना था। उसने शंकर से कहा-'शंकर, मुझे तुम्हारी सोच पर बिल्कुल भी क्रोध नहीं है, बल्कि पीड़ा है... अपने प्रेम से बिछड़ जाने की। क्योंकि सर्वप्रथम तुमने प्रेम को कुरूपता प्रदान की और उसके बाद उसकी निर्मम हत्या भी कर दी। मैं यह भी जानती हूँ कि इस लाश की अंत्येष्टि का भार भी मेरे ही ऊपर है। समाज में अग्नि परीक्षाओं का भार भी स्त्रियों के ही जिम्मे आता है किंतु मैं तुम्हें स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि ना तो मैं सीता हूँ और ना ही उसका अनुसरण करने वाली समाज की अन्य औरत।'वह एक पल को रुकी, उसने चढ़ाई अपनी साँसों को संयमित किया और बोली, 'वहीं दूसरी ओर राम तो तुम भी नहीं हो जो मुझसे मेरी पवित्रता का सबूत माँगो। और अगर राम होते भी, तो आज मैं और मेरा चरित्र, तुम्हारी सोच का मोहताज नहीं हैं आज मेरे लिए तुम केवल और केवल हत्यारे हो। हम दोनों के प्रेम और विश्वास को मार चुके हो तुम। तुम्हारा सानिध्य अब मेरे बर्दाश्त के बाहर है। तुमको यहाँ से चले जाना चाहिए।' इतना कहकर अपर्णा अपने कमरे में चली गई।

नीला काकी इस पूरे दृश्य की साक्षी थी। वह तुरंत अपर्णा के पीछे-पीछे उसके कमरे की ओर भागी। शंकर को अपनी विवेकहीनता का आभास हो चला था। ईर्ष्या उसके शरीर से आत्मन की भाँति सब कुछ अपने अंदर समेटकर वहाँ से प्रस्थान कर चुकी थी। यह वह समय था जब शंकर के सामने सारे विकल्प समाप्त हो चुके थे मात्र वापस लौट जाने के अलावा।

हाँ! उसके साथ कोई था तो केवल पश्चाताप की झुलसन...।❑

डिजिटल में पढ़ना; सहज व सुविधाजनक है